International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 27-04-2022, Accepted: 14-05-2022, Published: 28-05-2022
Volume 8, Issue 3, 2022, Page No. 19-21

फणीश्वर नाथ रेणु की कथा–भाषा

विपिन कुमार
शोधार्थी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली, भारत

सारांश
भाषा अभिव्यक्ति का एकमात्र सशक्त माध्यम है, जैसा कि भाषाविदों का कहना है कि शब्द भाषा संरचना की पहली अनिवार्य इकाई है। अतः किसी भी रचना में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। भाषा की इस क्षमता को फणीश्वर नाथ रेणु ने बखूबी पहचाना और उन्होंने भाषा से वही काम लिया जो वह चाहते थे। रेणु जी ने यह पहचाना की भाषा ही वह तत्व है जो सबसे पहले नजर आती है, इसीलिए उन्होंने भाषा के स्तर पर नवीन प्रयोग किए और लंबे समय से एक लीक पर चली आ रही भाषा की शैली को बदल कर "आंचलिक" बनाया। इस प्रकार उन्होंने भाषा को नए आयाम प्रदान किए जो अतुलनीय है, उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा में पाठक को बांधने की जबरदस्त क्षमता है।

मूल शब्दः कथा–भाषा, अंचलिकता, ध्वन्यात्मकता, ग्रामीण–परिवेश, लोकोक्ति

प्रस्तावना
रेणु जी के कथा–साहित्य की अन्य सारी उपलब्धियों और विशेषताओं के अतिरिक्त जिस महत्वपूर्ण उपलब्धि और विशेषता को सभी आलोचकों ने रेखांकित किया है वह है उनके कथा–साहित्य की भाषिक संरचना।
"मैनेजर पांडेय" ने रेणु की भाषा के संदर्भ में कहा है कि–"वह पाठकों को ग्रामीण जीवन से आत्मीय बनाकर उस जीवन के अनुभवों की विशिष्टता का बोध कराने वाली भाषा है। वह ग्रामीण जीवन के यथार्थ को मूर्त, जीवन्त और सम्वेधः बनाने वाली स्पंदनशील भाषा है।"[1]
रेणु जी ने अपने कथा–साहित्य में पात्रों परिवेश के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। भाषा के इस स्वरूप को हम उनके उपन्यासों और कहानियों में देख सकते हैं। रेणु जी ने अपनी कहानी "तीसरी कसम" में 'हीरामन' के संदर्भ में कुछ इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करते हैं, जैसे– "हिरामन!" वही फेनूगिलसी आवाज किधर से आई?" इस तरह की भाषा का प्रयोग करके वह ग्रामीण परिवेश की समूची गन्ध और सजीवता को उद्घाटित करते हैं। कुछ इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग रेणु जी ने मैला आँचल के पात्र 'बालदेव' के द्वारा कही है, जैसे–"पियरे भाइयों! कोठारिन साहेब जितना बोली सब ठीक है लेकिन सबसे बड़ा दोखी हम हैं। हमारे कारन ही गाँव में लड़ाई–झगड़ा हो रहा है। "इस प्रकार हम देख सकते हैं कि रेणु जी के कथा–साहित्य की भाषा अपने परिवेश तथा पात्रों के अनुकूल स्वरुप ग्रहण करती है। रेणु के कथा–साहित्य में अनेक पात्रों की उपस्थिति है, सब जगह भाषा पात्रों के हिसाब से है, कहीं पर भी ऐसा नहीं लगता कि एक ग्रामीण अनपढ़ व्यक्ति, शिक्षित व्यक्ति की तरह बोल रहा है। रेणु की ग्रामीण और शहरी भाषा का अंतर इन दो उदाहरणों के द्वारा देखा जा सकता है–"खलासी जी सरकारी आदमी हैं। खलासी जी यदि लाल पताखा दिखला दें तो गाड़ी भी रुक जाए। रुकेगी नहीं?"
"विशाल प्रयोगशाला साम्राज्य लोभी शासनों की संगीनों के साये में वैज्ञानिकों के दल खोज रहे हैं। ....गंजी खोपड़ियों पर लाल हरी रोशनी पड़ रही है मकड़ी के जाल... जाल की तरह।
"रेणु की भाषा के सम्बंध में "उपेंद्रनाथ अश्क" ने कहा है–"पात्रानूकुल भाषा लिखने में रेणु सिद्धहस्त हैं। मन की स्थिति, परिस्थिति, शिक्षा, जाति, स्वभाव आदि में उनकी भाषा अनुमोदित रहती है। अतएव चरित्र–चित्रण में भरपूर योग देती है।"[2]
रेणु जी अपने कथा–साहित्य में अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग करते हैं, जो उनकी कथा–भाषा को और भी जीवन्त बनाते हैं। उन्होंने अपने पात्रों से भोजपुरी, मैथिली, बंगाली, उर्दू, अंग्रेजी, और संस्कृत के शब्दों को उनके परिवेश तथा स्थानीयता के अनुसार बुलवाये हैं। जैसे–बंगाली पदाधिकारी हिंदी में बोलता है परन्तु उसकी भाषा में बंगाली लहजा मिला हुआ है–"ओ आप तहसीलदार है! ठीक बात! हम लोग डिस्ट्रिक बोर्ड का आदमी है।' इसी प्रकार दरोगा की हिंदी भोजपुरी से युक्त है, जैसे–ष्मगर क्या करे? साला आधा बात बोलता है, बटच...आधा पेट में रखता है। साले हमको चीन्ह ले। हम दूसरे जिला के नहीं, हमारा घर इसी जिला में है।" परबंगा स्टेट का जनरल मैनेजर अंग्रेज है अतः उसकी भाषा पर अंग्रेजी का प्रभाव है, जैसे–ष्अमारा स्टेट में एक भी बडमाश को अम नहीं देखने मांगटा। तुम अमारा टेसीलदार को झूठ बोला। अमारा अमला झूठा? तुम साला का बच्चा सच्चा?' इन सब के बाद भी उन्होंने अनेक शब्दों का प्रयोग किया जो उनकी भाषा को और अधिक मारक बनाते हैं, जैसे–'मिथिला में गम हो या खुशी या फिर हंसी सबके साथ जुलूम शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'जुलूम हंसी, जुलूम खुशी, जुलूम गम।' कुछ और विशेष शब्दों को देखा जा सकता है, जैसे–गमकोआ (महकना वाला), चुमोना (सगाई), भुरुकवा (भोर का तारा) आदि। गांव में प्रचलित शब्द और उनका बिगड़ा रूप जिनका प्रयोग रेणु के उपन्यासों में मिलता है, जैसे–डिस्टिबोट, रिचरब, पुलोगराम, मलेटरी आदि। उर्दू भाषा का भी प्रयोग देखा जा सकता है–जहालत, जेहन, इनकिलाब, आवाम आदि। वे संस्कृत के उच्चारण की दृष्टि से कठिन शब्दों को सरल तदभवों में बदलते हैं– दोख, मूरख, परताप, विद्यमान, परफुल्लो आदि।

रेणु जी ने भाषा के स्तर पर सबसे बड़ा परिवर्तन ध्वनि को लेकर किया है। उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी ध्वन्यात्मकता जो उनके उपन्यासों तथा कहानियों में दिखाई देता है, जैसे–'रसप्रिया', 'सिरपंचमी का सगुन', 'नित्यलीला' आदि में देखा जा सकता है। 'रसप्रिया' कहानी में अनेक ध्वनियों का प्रयोग रेणु जी ने किया है, जैसे– इस कहानी में ढोलक की आवाज का बहुत ही सुंदर चित्रण किया है–धिरिनागि, धिरिनागि, धिनता। चील का आसमान में टिहिंकारी भरना टि हिं टि, टिं टिं ग आदि बहुत से प्रयोग किये हैं। मैला आँचल में तो रेणु जी ने अनेक प्रकार की ध्वनि का प्रयोग किया जिससे उनकी भाषा को सरसता मिलती है, जैसे–पहलवान का ढोलक पर थाप देना –'चटधा गिड़धा आ जा भिड़जा' आदि बहुत से प्रयोग अपनी भाषा में किये हैं । रेणु की भाषा संरचना के सम्बंध में 'मार्कंडेय सिंह' जी का कहना है कि–"सायास प्रयत्न की जगह ऐसा लगता है कि भाषा के उनके जैसे प्रयोग के बिना अंचल के जीवन्त रुप का प्रस्तुतिकरण सर्वथा असम्भव है।"[3] रेणु जी ने कहीं–कहीं पर अधूरे वाक्यों से ही पूरे वाक्य का काम लिया है और कहीं–कहीं, एक–एक शब्द से पूरा–पूरा वाक्य व्यंजित किया है, जैसे– ऐ!– बूढे मिरदंगिया ने चोंकते हुए कहा–रसप्रिया? हाँ...नहीं। तुमने कैसे...तुमने कहाँ सुनाबे... आदि।

रेणु जी ने अपनी भाषा को सरसता तथा मधुरता प्रदान करने के लिये यथायोग्य स्थानों पर मुहावरे तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया है जो उनकी भाषा को सरस बनाते हैं, जैसे–मक्खनी फुआ, बिरजू की माँ, जंगी की बहू के बीच होने वाले संवादों में भाषा का यह रूप देखा जा सकता है–'चम्पिया के सिर चुड़ैल मंडरा रही है, मेरे मुँह में आग लगे, कथरी के नीचे दुशाले का सपना।, बि–र–र–जू की में ....या के आगे नाथ और पीछे पगहिया न हो, तब ना–आ–आ' आदि। कुछ इसी प्रकार के प्रयोग उनके उपन्यासों में दिखाई देता है, जैसे–कब तक लाल किनारी वाली साड़ी चमकाओगी, बेटा–बेटी केकरो धीढारी करो मंगरो, चालनी कहे सुई से की तेरी पेंदी में छेद आदि मुहावरे तथा लोकोक्तियां उनके कथा–साहित्य की भाषा को एकदम सजीव बनाते हैं।

रेणु जी ने अपनी भाषा को और भी जीवन्तता प्रदान करने के लिये बिंबों, प्रतीकों और अलंकारो का प्रयोग अपने कथा–साहित्य में किया है। रेणु की कहानी श्तीसरी कसमश में अनेक बिम्ब और प्रतीक उभरते हैं जो कहानी को और भी सजीवता प्रदान करते हैं, उनकी इस कहानी में बैलगाड़ी की यात्रा की शुरुआत से लेकर अंत तक बिम्ब आते हैं। कुछ बिम्ब वर्तमान के और कुछ अतीत के होते हैं, ये बिम्ब अनेक स्थानों पर प्रतीकात्मक हो जाते हैं, जैसे–'हीराबाई का हाथ रुक गया, उसने हिरामन के चेहरे को गौर से देखा फिर बोली,"तुम्हारा जी बहुत छोटा हो गया है। क्यों मीता ? महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है, गुरू जी! "मैला आँचल में भी कई स्थानों पर बिम्ब उभरते हैं। एक ऐसा ही बिम्ब बालदेव के संदर्भ में उभरता है–"कैसा पिशाच था बुडढा ! बूढी तो और भी खटान्स थी, खेकसियारी की तरह हरदम खेक–खेक करती थी। "इन प्रतीक,बिम्बों और अलंकारों के माध्यम से रेणु जी ने भाषा को चर्मोत्कर्ष प्रदान किया है।

रेणु जी ने लोकगीत, लोकसंगीत तथा लोककथाओं के माध्यम से अपनी कथा–भाषा को और भी सजीवता तथा जीवन्तता प्रदान करते हैं, उन्होंने अपने कथा–साहित्य में लोकगीत तथा लोककथाओं का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है, जैसे–वर्षा ऋतु का गीत हो, होली का गीत हो, आदि लोकगीतों का प्रयोग करके उन्होंने हिंदी–साहित्य के सृजन में अपनी लेखनी से हिंदी साहित्य को समृद्धशाली बना दिया है। वर्षा ऋतु में गाये जाने वाले लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

अडरे मास आसाढ़ रे। गारजे घन
बिजूरी– ई चमके सखि हे ए ए!
मोहे तजी कन्ता जाये पर– देसा आ–आ
कि उमडू कमला माई हे।
हँडरे! हँडरे.... (पृष्ठ 151)

इसी प्रकार तंत्रिमा टोली में सुरंगा–सदाब्रिज की लोककथा के गायन का प्रसंग मिथिला अंचल में प्रचलित लोकगीतों और लोककथाओं को साकार करते दिखाई देते हैं–

सासू मोरा मरे हो मरे मोरा बहिनी से
मरे ननद जेठ मोर जी!
मरे हमार सब कुछ पलिक्खा से
फसी मछली परेश से डोर जी! (पृष्ठ 47)

रेणु जी के कथा–साहित्य में हम उनकी चित्रात्मक शैली को भी देख सकते हैं। उनकी इस विशेषता के कारण छोटे–छोटे चित्रात्मक दृश्यों का अनुभव होता है। उनके यहाँ पर कहीं नदी–नालों का चित्रण किया गया है तो कहीं खेत–खलिहानों का और कहीं खेतों की लीक से हटकर चलती बैलगाड़ी का। बैलों के गले में पड़ी घंटियों के झुनूर–झुनूर ध्वनि का वर्णन तो कहीं सांस्कृतिक रीति–रिवाज और त्यौहारों का उल्लासपूर्ण एवं चित्रात्मक वर्णन है। "डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेयष के शब्दों में–"रेणु के उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता है उनके द्वारा पाठक, भारतीय गांव की जीवित दुनिया में पहुंचकर विभिन्न मार्मिक दृश्यों का साक्षात्कार करता है। ये दृश्य पृथक चित्र मात्र नहीं बल्कि समन्वित रूप से एक संसार प्रस्तुत करते हैं।"[4]

"हंस कुमार तिवारी" भी कुछ ऐसा ही लिखते हैं– "जिन शब्द विन्यासों, लोकोक्ति, मुहावरे, दोहे, गीत आदि को रेणु जी ने इस इलाके के जनजीवन से उठाया है, वह उन जैसे गहरी अनुभूति संपन्न लेखक के लिए ही संभव है।"[5] 'परतीः परिकथाश का आरंभ ही वीरान बंजर धरती की व्यथा से हुआ है जो एक चित्रात्मक बिम्ब उपस्थित करता है–

"धूसर वीरान, अंतहीन प्रांतर....
पतिता भूमि, परती जमीन–वन्ध्या धरती....
धरती नहीं, धरती की लाश, जिस पर कफ़न की तरह फैली हुई हैं,
बालूचर की पंक्तियाँ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेणु जी अपनी चित्रात्मक शैली से परिवेश को एकदम सजीव कर देते हैं। इसीलिये श्गोपाल राय' कहते हैं कि–"एक प्रादेशिक भाषा के शब्दों में इतनी सामर्थ्य भर देना रेणु जैसे कथा–शिल्पी के लिए ही सम्भव था।"[6]

रेणु के कथा–साहित्य में विभिन्न हास्य और व्यंग्य के प्रसंगों द्वारा जन–जीवन का वैशिष्टय उभरा गया है। विधापद नाच में वीकटा और लंबड़ा के द्वारा व्यवस्था पर व्यंग किया गया है जिसे सुनकर सब लोग लोटपोट हो जाते हैं, जैसे– थारी बेंच पटवारी के देलियै/लोटा बेंच चौकीदारी/बाकी थोड़के लिखाई जे रहलै/कलक देलक धुराई रेधीरजा। ये हास्य–व्यंग्य जीवन में सरसता घोलते हैं, जैसे बालदेव जी तो नाम में लाठी तलवार नहीं लगाते जाट– नट्टिन के खेल में ग्रामीण औरतों द्वारा बड़े–बड़े लोगों का उनके नाम बिगाड़ कर गालियां देना श्परतीः परिकथाश उपन्यास में श्पंडित सरबजीत चौबेश का बाँ–आँ–आँ–आँ का नारा लगवाना परिहास के प्रसंग हैं। इन हास्य और विनोदपूर्ण व्यंग्य प्रसंगों के द्वारा स्थानीय रंग तो उभरा ही भाषा भी स्वाभाविक बन गई है। रेणु के उपन्यास तथा कहानियों की भाषा में सब जगह स्थानीय रंग भरा है। स्थानीयता का निर्वाह शब्द–गंध–वर्ण में पूरी तरह से हुआ है । सब जगह मिट्टी की गंध विद्यमान है भाषा–संरचना के इतने प्रकार के आयामों का प्रयोग तथा विभिन्न प्रकृति के शब्दों का इतना बड़ा संसार रच कर भी रेणु जी ने कहीं भी अपनी भाषा को बोझिल नहीं होने दिया है, यही उनकी शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता है। इस संबंध में "डॉ रामविलास शर्मा" जी लिखते हैं कि–"रेणु की रचनाओं में ग्रामीण समाज के वर्ग–संघर्ष, वर्ग–विभेद और अत्याचारों का चित्रण उन्हें प्रेमचंद परम्परा से जोड़ता है।"[7]

अतः कह सकते हैं कि रेणु की कथा–भाषा हर–तरह से परिवेश और परिस्थिति के अनुकूल है जो भाषा के अनेक रूपों से हमारा साक्षात्कार कराती है, ऐसा सिर्फ रेणु जी ही कर सकते हैं। उनकी भाषा पाठक को उबने नहीं देती उसे बाँधे रखती है । रेणु भाषा की तथा सृजन की दृष्टि से हिन्दी कथा–साहित्य के अतुलनीय कथाकार हैं। अंत में बात यह है कि रेणु जी ने शब्द और वाक्य विन्यास को अपने व्यक्तित्व और पाण्डित्य से इतनी दूर रखकर उनका व्यवहार किया है कि उनके माध्यम से इलाके की अपनी विशिष्टता और जन–जीवन सजीव होकर सामने आता है, इनका सफलता के साथ ऐसा प्रयोग कर पाना रेणु जी के लिये ही सम्भव है।

सन्दर्भ

1. मैनेजर पाण्डेय, मानवीयता की तलाश का कलात्मक प्रयास, फणीश्वर नाथ रेणु और मार्क्सवादी आलोचना, सम्पादक–मधुरेश, पृष्ठ–145,प्रकाशन– यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण–2008।
2. उपेन्द्रनाथ अश्क, मैला आँचल (वाद–विवाद और संवाद),सम्पादक– भारत यायावर, पृष्ठ–30, यश प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), संस्करण– प्रथम 2006।
3. मार्कंडेय सिंह, कथा–भाषा और मैला आँचल, मैला आँचल का महत्व, सम्पादक– मधुरेश, पृष्ठ–84, प्रकाशन– लोकभारती, इलाहाबाद, संस्करण– तृतीय 2008।
4. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिंदी उपन्यासरू उपलब्धियाँ, पृष्ठ– 162, प्रकाशन–राधाकृष्ण नई दिल्ली, संस्करण–1983
5. हंस कुमार तिवारी, कथा–शिल्पी रेणु की भाषा– विपक्ष, संपादक– भारत यायावर, अंक 5, 6 जुलाई,1990 पृष्ठ– 254, संस्करण– 4 बोकारो स्टील सिटी, बोकारो।
6. गोपाल राय, फणीश्वर नाथ रेणु और मैला आंचल, पृष्ठ–132, प्रकाशन– नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ,संस्करण– 1992।
7. डॉ रामविलास शर्मा, आस्था और सौंदर्य, पृष्ठ–150, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।